पहला अध्याय

सामाजिक न्याय : अवधारणा तथा वैचारिक आधार

इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय एक सार्वभौमिक अवधारणा बन गया है। सामाजिक न्याय की बात कोई नई बात नहीं है। सामाजिक न्याय जो समानता पर आधारित है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत व्यक्तिगत हित तथा सामूहिक हित के संबंध को प्रभावित करने वाले विचारों और घटनाओं का मूल्यांकन किया जाता है। भारतीय संविधान के अंतर्गत सामाजिक न्याय की स्थापना की गई है। भारतीय परंपरा के अनुसार भी सामाजिक न्याय के आधारों को प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक न्याय का वैचारिक आधार जिसके अंतर्गत विद्वान्-चिन्तकों ने विचारों एवं विश्लेषण के आधार पर अपने वैचारिक आधारों का परिचय दिया है। सामाजिक न्याय की अवधारणा एवं वैचारिक आधार को विस्तारपूर्वक विमर्श करने से पहले सामाजिक न्याय के परिचय को समझना जरूरी है।

1.1 सामाजिक : अर्थ तथा परिभाषा

1.1.1 शाब्दिक अर्थ :

मनुष्य समाज में रहकर सामाजिक प्राणी कहलाता है। समाज उन सामाजिक संबंधों का नाम है जिसके अंतर्गत हर व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। मनुष्य समाज में रहकर रीति-रिवाज, धर्म, कानून, संस्थाओं, समुदाय व संस्कृति को ग्रहण करता है। वह समाज को व्यवस्थित रूप देने एवं समाज में संतुलन स्थापित करने में सम्पूर्ण रूप से सामाजिक बन जाता है। सामाजिक शब्द मूलत: समाज से संबंधित है। 'समाज' में 'इक' प्रत्यय लगने के योग से सामाजिक शब्द बना है। अंग्रेजी भाषा में सामाजिक शब्द का पर्याय 'सोशल' (Social) है, जिसका अर्थ है समाज संबंधी।

परिभाषा :

हिंदी शब्दकोश के अनुसार सामाजिक का अर्थ, "समाज से संबंधित सामाजिक रीति-रिवाज, समाज का जैसे सामाजिक सुधार।"[1]

अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश के अनुसार सामाजिक का अर्थ, "समाज और सामाजिक ढांचे से संबंधित : सामाजिक, समाज-मूलक। समाज में लोगों की स्थिति से संबंधित : सामाजिक।"[2]

मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार सामाजिक का अर्थ, "सामाजिक वि० (सं० समाज+ठक्+इक) प्राचीन भारत में 'सभा' नामक संस्था से संबंध रखने वाला, आज कल समाज विशेष जन-समाज से संबंध रखने वाला। समाज का जैसे सामाजिक व्यवहार, सामाजिक सुधार, सामाजिक संबंधों के फलस्वरूप होने वाला, जैसे सामाजिक रोग।"[3]

1.2 न्याय : अर्थ तथा परिभाषा

1.2.1 शाब्दिक अर्थ :

मानव समाज की आधारभूत आवश्यकता न्याय है। न्याय मानव के जीवन व आचरण में विशेष महत्त्व रखता है। न्याय के अभाव में एक सुखद, शांत व उन्नतशील समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। न्याय समाज का स्तम्भ माना गया है। न्याय समानता और स्वतन्त्रता से सम्बन्ध स्थापित करता है। अंग्रेजी भाषा में न्याय शब्द का पर्याय 'जस्टिस' (Justice) है, जो मूलत: लेटिन शब्द 'जस' (Jus) से निकला है। जिसका अर्थ है बांधना (Bond or Tie)।

परिभाषा :

हिंदी शब्द कोश के अनुसार न्याय का अर्थ, "उचित अनुचित का विवेक, नीति संगत बात इंसाफ, निबटारा, फैसला, उचित ठीक वाजिब जैसे न्याय की बात।"[4]

अंग्रेजी हिंदी शब्द कोश के अनुसार, न्याय का अर्थ, "लोगों के साथ उचित व्यवहार, न्यायोचित होने का गुण, किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ न्यायोचित बरताव करना।"[5]

मानव मूल्य परक शब्दावली विश्वकोश के अनुसार, "न्याय ! यह संस्कृत के न्याय (नियन्ति = अनने-नि+इ+घञ्) का हिंदी रूप है, जिसके अर्थ है- प्रणाली, रीति, नियम पद्धति, योजना।"[6]

हलायुध कोश के अनुसार, "न्याय (नियमनेन ईयते इति) (नि+इण) के अर्थ नीति, तर्क विधा, आन्वीक्षिकी, तर्कशास्त्र"[7]

मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार, "न्याय का अर्थ (नि+√इ+घञ्) के दर्जन अर्थ दिए है।

1. किसी काम को पूरा करने का ढंग, नियम या योजना।
2. उचित, उपयुक्त या ठीक होने की अवस्था या भाव।
3. ऐसा आचरण जिसमें नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार का अनौचित्य पक्षपात या बेईमान न हों।
4. प्रमाणों द्वारा विषयों का किया गया परीक्षण।
5. विवाद आदि प्रसंगों में अधिकारिक या प्रामाणिक रूप से निष्पक्ष होकर यह निर्णय या निश्चित करना कि कौन सा उचित हैं और कौन सा अनुचित है, अथवा भविष्य में कार्य का निर्वाह किस प्रकार होना चाहिए और किसे कौन सी वस्तु अथवा क्या दण्ड मिलना चाहिए।
6. तुल्यता, समानता।
7. तर्कशास्त्र-वह सम्यक् तर्क जो प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन तथा निगमन-इन पाँच अवयवों से युक्त हो।"[8]

मानव जीवन में न्याय बहुत महत्त्व रखता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के साथ सत्यता के आधार पर न्याय होना उसकी स्वतंत्रता एवं आत्म-विकास का प्रतीक होता है। राजेन्द्र यादव का मत है कि "मेरी समझ में न्याय का अर्थ होता है बराबर का व्यवहार और बराबर का स्टेटस। जो अवसर या सुविधा आप अपने लिए चाहते हैं, वही दूसरों के लिए भी दें, यही न्याय है।"[9]

रामगोपाल सिंह का मानना है-"न्याय का आशय पक्षपात रहित व्यवहार से है।"[10] पवन चौधरी 'मनमौजी' न्याय का अभिप्राय इस प्रकार स्पष्ट करते है-"न्याय का अभिप्राय जस्टिस, इंसाफ, न्याय, परायणता, न्यायशीलता, धार्मिकता, औचित्य, सच्चाई, न्यायाधिपति एवं न्यायमूर्ति, धर्मनीति, सत्यता, न्यायकर्ता, न्यायाधीश से है।"[11] न्याय का ध्येय सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में अनुचित विषमताओं को दूर करना है। समाज में जो लोग सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक के माध्यम से किसी भी प्रकार के अन्याय से पीड़ित है उन्हें न्याय प्रदान करके ही उनके हितों की रक्षा संभव हो पाती है। शैलेन्द्र सेंगर के अनुसार-"न्याय का उद्देश्य

सामाजिक हित और व्यक्तिगत हित में समन्वय लाना है और इसका संबंध एक संगठित समाज से है जो समाज अपने नागरिकों को समान आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक अधिकार प्रदान करता है वह समाज न्यायपूर्ण है।"[12] स्वामी दयानन्द न्याय की परिभाषा देते हुए न्याय व अन्याय दोनों पक्षों को स्पष्ट करते है–"जो पक्षपात रहित सत्याचरण करता है वह न्याय और पक्षपात से मिथ्या आचरण करता है वह अन्याय कहलाता है।"[13] पं॰ दयानिधि शर्मा के अनुसार न्याय, "समाज शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए तथा समाज और व्यक्ति की सुधार की दृष्टि से दी गई दण्ड व्यवस्था को न्याय कहते है।"[14]

1.2.3 पाश्चात्य दृष्टिकोण :

बार्कर के अनुसार, "न्याय व्यवस्था का सम्बन्ध व्यक्तियों तथा उनके बीच अधिकारों के वितरण का नियमन करने वाले सिद्धान्तों से है, न्याय क्या होता है? इसके लिए हमें न्याय के अंग्रेजी पर्यायवाची 'जस्टिस' (Justice) के मूल लेटिन शब्द 'जस' (Jus) के अर्थ को समझना होगा, जिसका अर्थ उस भाषा में 'जोड़ने या संयोजित करने' से होता है, इस शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर न्याय का अर्थ हम संयोजित करने के रूप में कर सकते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि संयोजन का विषय क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में सामाजिक न्याय के रूप में न्याय के विषय के रूप में हम कह सकते है कि उसका उद्देश्य व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों का उचित एवं सामंजस्यपूर्ण संयोजन करना है, इस आधार पर न्याय हम उस सामाजिक आदर्श को कह सकते है, जिसके द्वारा मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों की उचित व्यवस्था इस उद्देश्य से की जाती है कि संगठित समाज की ईकाई के रूप में व्यक्तियों के अधिकारों में सामंजस्य बना रहे तथा व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास तथा समाजगत विकास में सुसम्बद्धता बनी रहे।"[15]

प्लेटो के अनुसार–"न्याय मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वभाव की प्राकृतिक माँग है।"[16]

आगस्टाइन के अनुसार–"जिस राज्यों में न्याय नहीं होता वह डाकुओं के झुण्ड मात्र कहे जा सकते है।"[17]

मेरियम के मतानुसार–"न्याय उन मान्यताओं और प्रक्रियाओं का योग है जिसके माध्यम से प्रत्येक मनुष्य को वे सभी अधिकार और सुविधाएं जुटाई जाती है जिन्हें समाज उचित मानता है।"[18]

सिसरो के अनुसार–"न्याय समस्त सद्गुणों का मुकुटमणि है।"[19]

थॉमस एक्विनास ने न्याय की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए है– "न्याय प्रत्येक व्यक्ति को उसके अधिकार दिए जाने की निश्चित व सनातन इच्छा है।"[20]

एफ० ए० हेयक के मतानुसार–"न्याय अपने स्वाभाविक रूप से किसी सामाजिक हित की मृगतृष्णा का पीछा नहीं करता बल्कि व्यक्ति के हित की प्राप्ति का प्रयास करता है।"[21]

हैन्स केल्सेन के अनुसार, "न्याय एक बुद्धि–ग्राह्य आदर्श नहीं है चाहे यह इच्छा शक्ति और कर्म के लिए कितना ही अपरिहार्य हो, यह बौद्धिक विवेचन का विषय नहीं है। जहाँ तक ज्ञानगम्य बोध का प्रश्न है, हित और इसलिए हितों के संघर्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[22]

R.W. Bardwin saying, "Justice being essentially a quality of the behaviour of one man to another that is of man in society,All Justice is a social justice".[23]

Roman lawyer Definition of Justice, "Justice is the constant and Perpetual will of rendering to each his right."[24]

R.M. Hare writes to Justice, "Justice is a word of commanding like good and it is used to guide choices".[25]

Sidgwick Declares to Justice, "Quality which it is ultimately desirable to realize in conduct and the social relations of men."[26]

1.3 सामाजिक न्याय : अर्थ तथा परिभाषा

1.3.1 शाब्दिक अर्थ :

सामाजिक न्याय वर्तमान युग का बहुचर्चित मुद्दा है। सामाजिक न्याय से अभिप्राय समाज के सभी समूहों का समान रूप से विकास हो। वर्तमान संदर्भ में 'न्याय' शब्द सामाजिक न्याय का पर्याय बन चुका है। समाज में 'इक' प्रत्यय लगने से सामाजिक शब्द बनता है जो समाज से संबंधित है। सामाजिक शब्द को अंग्रेजी में 'सोशल' (Social) कहा जाता है। न्याय मूलत: लेटिन भाषा के 'जस' (Jus)

शब्द से निकला है जिसका अर्थ है बांधना। न्याय को अंग्रेजी में 'जस्टिस' (Justice) कहा जाता है। समाज में रहने वाले सभी नागरिकों के अधिकारों व कर्त्तव्यों का सही निर्धारण करके न्याय प्रदान करना सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय का अर्थ, "समाज के सदस्य को पूर्ण नागरिकता की हैसियत की प्राप्ति से है।"[27]

1.3.2 परिभाषा :

सामाजिक न्याय के बारे में रामविलास शर्मा अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है- "सामाजिक न्याय का मतलब है कि समाज में सभी मनुष्यों को चाहे वे स्त्री हो या पुरुष, इस धर्म के हों या उस धर्म के, इस जाति के हो या उस जाति के- सबको समाज रूप से जीने और अपना विकास करने के अवसर मिलने चाहिए।"[28] सुरेन्द्र कटारिया सामाजिक न्याय के अंतर्गत अपनी परिभाषा को व्यक्त करते है- "सभी व्यक्ति जन्म से एक समान है और सभी में मानवीय गरिमा तथा गौरव का भाव है। किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व का साधन मात्र नहीं समझा जा सकता है। धर्म, वंश, प्रजाति, नस्ल, जाति, लिंग तथा अन्य आधारों पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेद करना, सामाजिक न्याय के विरूद्ध है।"[29]

सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत कुछ व्यक्तियों के समान अवसर प्रदान न करके असमानता का भेदभाव किया जाता है जिसमें अन्याय का जन्म होता है। समाज में अवसरों से वंचित रखे जाने पर एवं अन्याय से मुक्ति पाने के लिए सामाजिक न्याय की मांग की जाती है। आर॰ एन॰ त्रिवेदी सामाजिक न्याय के मत के बारे में अपने कथन को प्रस्तुत करते है-"मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न माना जाए, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति के समुचित विकास के समान अवसर उपलब्ध हों, किसी व्यक्ति का किसी रूप में शोषण न हों, समाज के प्रत्येक व्यक्ति की जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी हों, आर्थिक सत्ता चन्द हाथों में केन्द्रित न हों, समाज का कमजोर वर्ग अपने को असहाय महसूस न करे।"[30]

राजेन्द्र यादव सामाजिक न्याय को लेकर विचार विमर्श करते हुए कहते है-"सामाजिक न्याय का अर्थ है कि दूसरों के अधिकार न मारे जायें, दूसरे का

अवसर न मारा जाये और उसे उसका प्राप्य मिले।"[31] ओमप्रकाश गाबा ने सामाजिक न्याय का अभिप्राय मानव लाभ से माना है तथा वे समाज के वंचित वर्गों की दशा सुधारने की मांग करते है ताकि समाज में जो निर्धन वर्ग व पीड़ित वर्ग है उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर मिले सके। "सामाजिक न्याय संगठित सामाजिक जीवन से जो भी लाभ प्राप्त होते है, वे इने-गिने लोगों के हाथ में सिमट कर न रह जाएं, बल्कि सर्वसाधारण को विशेषत: निर्बल और निर्धन वर्गों को उनमें समुचित हिस्सा मिले, ताकि वे सामान्यत: सुखी सम्मानित व निश्चित जीवन जी सके।"[32] समाज में सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए समानता व स्वतंत्रता महत्त्वपूर्ण मानी गई है जिसके अंतर्गत सभी व्यक्तियों के साथ पक्षपात रहित व्यवहार हो- "सामाजिक जीवन में सब मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाएं, स्त्री-पुरुष, गोरे-काले या जाति, धर्म, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को बड़ा-छोटा या ऊँचा-नीचा न माना जाएं, शिक्षा व उन्नति के अवसर सबको समान रूप से सुलभ हों और सब लोग मनुष्य-मनुष्य के नाते मिल-जुलकर साहित्य, कला, संस्कृति और तकनीकी साधनों का प्रयोग कर सके।"[33] रामगोपाल सिंह सामाजिक न्याय की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत करते है-"समाज अपने सभी वर्गों उपवर्गों के साथ पक्षपात रहित व्यवहार करता है तो उसे सामाजिक न्याय कहते है।"[34] शैलेन्द्र सेंगर के मतानुसार 'सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य मानव द्वारा मानव का शोषण समाप्त करना है। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे अवसर प्राप्त होने चाहिए जिनसे वह अपनी योग्यताओं का अधिकतम विकास कर सके।"[35]

महेन्द्र कुमार मिश्रा भी सामाजिक न्याय के अर्थ में सभी की समानता को जरूरी मानते है। समाज में निर्धन व्यक्तियों का शोषण न हो उन्हें भी न्याय प्रदान हो। वे कथन की पुष्टि करते हुए आगे कहते है-"सामाजिक न्याय एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उसके विकास के सभी उपकरण उपलब्ध कराए जाते है। सामाजिक न्याय समाज के असहाय अक्षम तथा जीवन से निराश हो चुके लोगों को राज्य की तरफ से सुरक्षा कवच के रूप में वितरण न्याय की माँग करता है तथा उनको सुरक्षित जीवन तथा आश्वासन प्रदान करता है।"[36]

D.N. Tripathi write to social Justice, "Social Justice involves the creation of a just and fair social order-just and fair to one and all. To make the social order just and fair for every member of the community, it may be necessary for those who are privileged to make some sacrifices for the sake of the good of unprivileged ones. In this sense, social justice is a revolutionary ideal."[37]

1.3.3 पाश्चात्य दृष्टिकोण :

प्लेटो के अनुसार, "सभी वर्ग जब अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन एकरसता में करते है, तो सामाजिक न्याय की प्राप्ति होती है। इस प्रकार समाज में शांति और सामंजस्य की स्थापना होती है। प्रत्येक वर्ग के बीच पूर्ण संतुलन सद्‌गुण को उत्पन्न करता है, सदगुण ही न्याय है।"[38]

हेयक के अनुसार, "समाज में व्यक्तियों को दी जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं का वितरण इस विशेष उद्देश्य के कारण सामाजिक न्याय उस कार्यप्रणाली से ज्यादा संबंधित है जिससे व्यक्तियों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का समतापूर्ण वितरण हो सके।"[39]

1.4 भारतीय परम्परा के अनुसार सामाजिक न्याय :

सामाजिक न्याय की धारणा को लेकर अनेक विचारकों ने अपने विचार प्रकट किए है। भारतीय परंपरा के अनुसार अनेक विचारकों ने समाज के प्रत्येक वर्ग को विकसित करने के लिए सामाजिक न्याय का समर्थन किया है। सामाजिक न्याय की अवधारणा के अंतर्गत समाज के प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग को विकसित होने के समान अवसर और स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। इस दृष्टि से भारतीय विचारकों में श्री अरविन्द ने समाज के पिछड़े वर्गों को आगे बढ़ाने के लिए और उन्हें सामाजिक न्याय देने के लिए उनका समर्थन किया है।

श्री अरविन्द जो कार्ल मार्क्स के विचारों से सहमत थे। उनका भी मानना था कि पूंजीपति द्वारा श्रमजीवी वर्ग के साथ किया जाने वाला शोषण सामाजिक अन्याय है। श्रमजीवी वर्ग एकजुट होकर अपने अधिकारों की मांग कर सकता है। "इसलिए एक प्रबल अल्प संख्यक वर्ग के लिए सबसे बढ़िया परामर्श यह है कि वह सदा समय रहते ही ठीक घड़ी की पहचान कर अपने अधिकार त्याग कर दे और अपने आदर्श, गुण, संस्कृति तथा अनुभव, समुदाय के बाकी के सारे व्यक्तियों

को या उसके उतने अंग को सौंप दे जो उन्नति करने के लिए तैयार है। जहां ऐसा प्रतीत होता है वहाँ सामाजिक समुदाय के बिना किसी बाधा, गंभीर चोट या व्याधि के स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता है।"[40] भारतीय परंपरा के अनुसार सामाजिक न्याय के अंतर्गत रविन्द्रनाथ टैगोर ने सामाजिक न्याय को लेकर अपने विचार व्यक्त किए है। वे सामाजिक न्याय के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता को महत्त्व नहीं देते, बल्कि सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता को भी महत्त्व देते है। उन्होंने स्वतंत्रता के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है- "वास्तविक स्वतंत्रता मनस और आत्मा की स्वतंत्रता है, वह हमारे पास बाहर से कभी नहीं आ सकती। केवल उसी के पास स्वतंत्रता है जो कि स्वतंत्रता से प्रेम करता है और उसे दूसरों में फैलाकर प्रसन्न होता है। वह जो कि दास बनाता है स्वयं बन्धनों से बंधता है, वह जो अलगाव उत्पन्न करने के लिए दीवारें बनाता है, स्वयं अपनी स्वतंत्रता के चारों ओर भी प्राचीरें खड़ी करता है, वह जो दूसरों की स्वतंत्रता में अविश्वास करता है स्वयं उसका नैतिक अधिकार खो देता है। शीघ्र अथवा देर से वह स्वयं भौतिक अथवा नैतिक दासता के दलदल में फंस जाता है।"[41] रविन्द्रनाथ टैगोर स्वतंत्रता और कानून दोनों को महत्त्वपूर्ण मानते हुए सामाजिक न्याय का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि कानून द्वारा स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता है। सामाजिक न्याय के लिए सभी व्यक्तियों को समानता देना आवश्यक है और वह समानता केवल राजनीतिक ही नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक भी होनी चाहिए।

भारतीय विचारकों में मानवेन्द्र राय ने भी सामाजिक न्याय के विषय में स्वतंत्रता को अधिक महत्त्व देते हैं। उनका मानना है जितनी मात्रा में स्वतंत्रता अधिक होगी, उतनी मात्रा में सामाजिक न्याय अधिक होगा मानवेन्द्र राय के अनुसार, "केवल आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्रत व्यक्ति ही सत्ता में दासता के सभी बंधनों को तोड़ सकते है और सबके लिए स्वतंत्रता ला सकते है।"[42] उनका मानना था कि सामाजिक न्याय के लक्ष्य के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के कार्यों में भाग लेने का अधिकार दिया जाना चाहिए, जिससे मानव में भ्रातृत्व की भावना स्थापित हो। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार सामाजिक न्याय, "भारत में योजना को देश के साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करना, उत्पादन बढ़ाना और सामान्य रूप से आर्थिक क्रियाकलापों की गति बढ़ाना है, विशेषकर औद्योगिक उत्पादन की। हमारा

आधारभूत लक्ष्य लोगों के जीवन स्तर में तीव्रगामी विकास उन साधनों से करना है जो कि समानता तथा सामाजिक न्याय की वृद्धि करे।"[43] सामाजिक न्याय के लिए जवाहर लाल नेहरू ने समाजवादी ढंग से समाज के निर्माण करने का लक्ष्य बनाया ताकि प्रत्येक व्यक्ति को विकास के अवसर प्राप्त हो उन्होंने स्पष्ट कहा- "व्यापक अर्थ में हमारा उद्देश्य समृद्धि की स्थिति तथा समाजवादी प्रकार के समाज का निर्माण करना है जहां व्यक्तियों में फर्क अधिक नहीं होगा और हर एक को समान अवसर मिलेगा।"[44]

1.5 सामाजिक न्याय की अवधारणा :

सामाजिक न्याय की अवधारणा में सामाजिक सदस्यों के कल्याण व विकास की वृद्धि की जाती है। समाज में जाति, रंग, सम्प्रदाय, लिंग, जन्म आदि के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव को मिटाने का कार्य ही नहीं, बल्कि समाज के कमजोर वर्ग व समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करना, सामाजिक न्याय की अवधारणा में निहित है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का इतिहास बहुत पुराना है। राजेन्द्र यादव बताते है-"जहाँ तक साहित्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि बराबरी के हक की माँग, अवसर की माँग, सम्मान की माँग, सामाजिक न्याय की माँग है और यह माँग तो कबीर और तुलसी के समय से, या भक्ति आंदोलन के समय से, या और भी बहुत पहले से जैसे बुद्ध और महावीर के समय से ही उठायी जाती रही है।"[45] राजेन्द्र यादव ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्वतंत्रता व समानता के अंतर्गत लिया है। जिससे समाज में बिना भेदभाव के बराबरी का हक मिलने से सामाजिक न्याय की मांग पूरी हो जाएगी। "सामाजिक सम्मान और मान्यता का अर्थ मेरी समझ में यह है कि अन्य जातियों से रोटी-बेटी का संबंध जोड़ने की यानी एक-दूसरे से विवाह करने की और साथ खाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। जैन, इस्लाम और ईसाई धर्मों की सबसे बड़ी ताकत यही थी कि उन्होंने साथ खाने और साथ पूजा करने को मान्यता दी। यह बराबरी की मान्यता की स्वीकृति है, जिसका हमारे यहाँ सबसे ज्यादा विरोध किया गया। न आप साथ खा सकते हैं, न साथ पूजा कर सकते हैं, न अन्य जातियों में विवाह कर सकते है। ये तीन चीजें समाज में सहज ढंग से हो सकें, जैसे एक समुदाय में या एक सोशल ग्रुप में होती हैं, तब सामाजिक न्याय की अवधारणा पूरी होती है।"[46]

सामाजिक न्याय की अवधारणा को लेकर विभिन्न मत स्पष्ट हुए हैं। इस अवधारणा के अंतर्गत समाज के सभी वर्गों को सामाजिक न्याय प्रदान हो, यही सामाजिक न्याय की अवधारणा के अंतर्गत आता है। समय-समय पर अनेक विचारकों ने सामाजिक न्याय पर विचार प्रकट किए है। इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय का विषय बहुचर्चित है। हमारे भारतीय संविधान में भी सामाजिक न्याय की स्थापना हुई है, जो कई वर्षों से दब-सा चुका है। सर्वप्रथम भारतीय संविधान की उद्देशिका में स्पष्ट व्यक्त है कि, "हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजसेवी पथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुवा बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान में आज तारीख 26 नवंबर 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।"[47] सामाजिक न्याय की अवधारणा में व्यक्ति की स्वतंत्रता व समानता पर बल दिया जाता है। जितनी अधिक मात्रा में स्वतंत्रता व समानता कायम होगी उतना ही अधिक मात्रा में सामाजिक न्याय की अवधारणा की पूर्ति होगी।

1.6 भारतीय संविधान में गर्भित सामाजिक न्याय :

भारतीय संविधान के अंतर्गत नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय प्रदान किए गए है। भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए संविधान के तीसरे (3) अध्याय में (अनुच्छेद 14-32) में प्रत्येक नागरिक को छः मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का उद्देश्य नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता, सुरक्षा एवं न्याय प्रदान करना है। संविधान के अंतर्गत राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में भी सामाजिक न्याय की स्थापना की गई है। संविधान के चौथे (iv) अध्याय में (अनुच्छेद 36-51) में निर्देशन सिद्धान्तों द्वारा सामाजिक न्याय की व्यवस्था की गई है। संविधान में निर्देशक सिद्धान्त जो नागरिक के कर्त्तव्य माने जाते है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक

सिद्धांतों का उद्देश्य भारतीय नागरिकों का आर्थिक, सामाजिक, नैतिक विकास करना एवं कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है जो सामाजिक न्याय में निहित है।

(i) मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 14–32)–भारतीय संविधान के अनुच्छेद (14–18) 14 के अंतर्गत समता का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 15 में धर्म, जाति, लिंग या स्थान के आधार पर भेदभाव का अंत कर दिया गया है। अनुच्छेद 16 के अंतर्गत लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता का प्रावधान है। अनुच्छेद 17 में 'अस्पृश्यता' का अंत कर दिया गया है। अनुच्छेद 18 के अंतर्गत राज्य सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं की जाएगी। इसमें उपाधियों का अंत कर दिया गया है।

(ii) (अनुच्छेद 19–22) अनुच्छेद 19 में स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है जैसे–भाषण देने की स्वतंत्रता, व्यवसाय करने की स्वतंत्रता, संस्था व संघ बनाने की स्वतंत्रता आदि। अनुच्छेद 20 के अंतर्गत अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 21 में प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 22 में कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण प्राप्त होगा।

(iii) (अनुच्छेद 23–24) अनुच्छेद 23 में शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 24 के अंतर्गत कारखाने आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध किया गया है।

(iv) (अनुच्छेद 25–28) अनुच्छेद 25 के अंतर्गत धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 26 में धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता दी गई है। अनुच्छेद 27 में किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता नियोजित की गई है। अनुच्छेद 28 के अंतर्गत व्यक्ति को कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना के लिए उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता प्रदान की गई है।

(v) (अनुच्छेद 29–30) अनुच्छेद 29 के अंतर्गत अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण संबंधी अधिकार प्रदान किया गया है। सरकार द्वारा शिक्षा–संस्थाओं में नागरिकों को प्रवेश देने में धर्म, जाति, वंश या भाषा के आधार पर भेदभाव

नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 30 में शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों को अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार के अंतर्गत प्रत्येक वर्ग विशेषत: अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि व संस्कृति सुरक्षित रखने का अधिकार है।

(vi) (अनुच्छेद 31-32) अनुच्छेद 31 में कुछ विधियों की व्यावृति में सम्पदाओं आदि के अर्जन के लिए उपबन्ध करने वाली विधियों के अधिकार उपलब्ध करवाये गये है। अनुच्छेद 32 के अंतर्गत संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किया गया है। इसमें नागरिक अपने अधिकारों के अपहरण होने की स्थिति में सरकार के विरूद्ध उच्च न्यायालय की शरण में जाकर न्याय की माँग कर सकता है।

2. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त (अनुच्छेद 36-51)

(i) अनुच्छेद 36 के अंतर्गत राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त में राज्य शब्द की व्याख्या की गई है।

(ii) अनुच्छेद 37 में यह स्पष्ट किया गया है कि इस भाग में अन्तर्विष्ट तत्त्वों के सिद्धान्त को न्यायालयों द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है।

(iii) अनुच्छेद 38 में राज्य जन कल्याण के लिए सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का यत्न करेगा।

(iv) अनुच्छेद 39 में राज्य द्वारा अपनाई जाने वाली नीति के कुछ सिद्धान्त सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त है।

(v) अनुच्छेद 40 में ग्राम पंचायतों का आयोजन किया गया है।

(vi) अनुच्छेद 41 में कार्य, शिक्षा और अन्य क्षेत्रों में सार्वजनिक सहायता प्रदान की गई है।

(vii) अनुच्छेद 42 के अंतर्गत कार्य और प्रसूति ने न्यायिक तथा मानवीय परिस्थितियों का आयोजन किया गया है।

(viii) अनुच्छेद 43 में श्रमिकों के लिए पर्याप्त जीविका उपार्जन है।

(ix) अनुच्छेद 44 में नागरिकों के लिए सामान्य दिवानी संहिता प्रदान की गई है।

(x) अनुच्छेद 45 के अंतर्गत बच्चों के लिए अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

(xi) अनुच्छेद 46 के अंतर्गत अनुसूचित जातियों तथा कबीलों के आर्थिक और शिक्षात्मक हितों को प्रोत्साहन दिया गया है।

(xii) अनुच्छेद 47 में सार्वजनिक स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए जीवन स्तर और पौष्टिक स्तर में वृद्धि की गई है।

(xiii) अनुच्छेद 48 में कृषि और पशु पालन का विकास किया गया है।

(xiv) अनुच्छेद 49 में ऐतिहासिक स्मारकों की रक्षा की गई है।

(xv) अनुच्छेद 50 के अंतर्गत न्यायपालिका और कार्यपालिका का पृथक्करण किया है।

(xvi) अनुच्छेद 51 के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था की स्थापना की गई है।

भारतीय संविधान में नागरिकों को प्रदान किए गए मौलिक अधिकार एवं राज्य-नीति निर्देशक के सिद्धांत सामाजिक न्याय के अंतर्गत निहित है।

1.7 सामाजिक न्याय का वैचारिक आधार :

1.7.1 कार्लमार्क्स : वर्ग चेतना

कार्ल मार्क्स एक महान दार्शनिक थे। इनका जन्म 5 मई 1818 को प्रशा (जर्मनी) में मध्यवर्गीय यहूदी परिवार में हुआ। कार्ल मार्क्स के विश्लेषण की मुख्य इकाई वर्ग है। दीन-हीन मजदूर वर्ग से कार्लमार्क्स को महान् सहानुभूति है। कार्लमार्क्स सामाजिक न्याय की अवधारणा आर्थिक आधार को मानते हैं। मानव-मूल्यों व अतिरिक्त मूल्यों के समानता व न्याय के पक्षधर रहे है। 'दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ' का नारा कार्लमार्क्स ने श्रमिक वर्ग को दिया है। मार्क्स संसार के समस्त मजदूरों को संगठित कर पूंजीवाद से घोर संघर्ष लेने के लिए आवाज उठाई। कार्लमार्क्स ने समाज के दो प्रमुख वर्ग 1 पूंजीपति वर्ग 2. श्रमिक वर्ग बताएं। मार्क्स वर्ग निर्माण में आर्थिक आधार को प्रधानता देते है। कार्ल मार्क्स का मानना है कि पूंजीपति वर्ग द्वारा हमेशा से श्रमिक वर्ग का शोषण होता आया है। श्रमिक वर्ग को अपने श्रम के परिणामस्वरूप न्याय की मांग करता है, जो पूंजीपतियों द्वारा हड़प लिया जाता है। जिससे आर्थिक हितों के आधार पर दोनों वर्गों में वर्ग संघर्ष बढ़ जाता है। श्रमिक वर्ग न्याय प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है। श्रमिकों में उत्पादन के साधन खरीदने की क्षमता नहीं होती है। जिसके

कारण वे पूंजीपतियों के शिकार होते है। कार्ल मार्क्स का मत है, कि "अब तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। स्वतंत्र व्यक्ति व दास, कुलीन व जनसाधारण, जागीरदार व रैयत, व्यापारिक प्रतिष्ठानों के मालिक व कारीगर एक शब्द में शोषक और शोषित सदा एक दूसरे के विरोध में खड़े होकर कभी प्रत्यक्ष व कभी परोक्ष रूप में अविराम युद्ध कर रहे है।"[48]

मार्क्स शोषक वर्ग पूंजीपति के विरोधी है और शोषित मजदूर व श्रमिक वर्ग के समर्थक व पक्षधर है। कार्ल मार्क्स का मानना है वर्ग संघर्ष करके उसके परिणामस्वरूप नये वर्गों की उत्पत्ति से समाज में परिवर्तन आ सकता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार, "जब विकास की प्रक्रिया में वर्ग संघर्ष लुप्त हो जाते है और सम्पूर्ण उत्पादन सम्पूर्ण राष्ट्र के एक वृहद् समुदाय के हाथों में केन्द्रित हो जाता है तो सार्वजनिक शक्ति का राजनीतिक स्वरूप जाता रहेगा। सच्चे अर्थों में राजनीतिक शक्ति केवल एक वर्ग को दूसरे वर्ग के दलन करने के लिए संगठित शक्ति है। यदि श्रमजीवी वर्ग पूंजीवादी वर्ग के साथ अपने संघर्ष में परिस्थितियों द्वारा अपने आपको एक शासक-वर्ग के रूप में संगठित करने के लिए विवश हो जाता है। यदि क्रान्ति द्वारा वह अपने आपको एक शासक-वर्ग बनाता है और इस रूप में वह उत्पादन की पुरानी स्थितियों को समाप्त कर देता है, तो वह उन स्थितियों के साथ ही साथ उन स्थितियों का जोकि वर्ग-विरोध का उत्पन्न करती है और सामान्यत: वर्गों को जन्म देती है, भी अन्त कर लेगा और ऐसा करके एक वर्ग के रूप में स्वयं अपना प्रभुत्व भी समाप्त कर लेगा।"[49]

कार्ल मार्क्स आर्थिक व्यवस्था में समानता दिला कर समाज को वर्गहीन समाज बनाना चाहते है जिसके परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग के साथ हो रहे अन्याय व वर्ग संघर्ष समाप्त हो जाएगा। कार्लमार्क्स ने श्रमिक वर्ग में वर्ग-चेतना के विकास पर अत्यधिक बल दिया है। वर्ग चेतना से तात्पर्य है, एक वर्ग के रूप में यह स्वीकार कर लिया जाए कि उच्च वर्ग के द्वारा किया गया शोषण को समाप्त करना है। उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के मध्य एक वर्ग मध्य वर्ग आता है जो निम्न वर्ग के साथ मिलकर उच्चवर्ग का सामना करता है। जिससे श्रमिक वर्ग पूंजीपतियों से अपना धन के लिए सफलतापूर्वक सामना कर सकें। कार्लमार्क्स साम्यवाद की स्थापना करना चाहते है। कार्लमार्क्स समाजवाद के अंतर्गत शोषण मुक्त व वर्गहीन समाज

के पक्षधर रहे है जिसमें कोई शोषक व शोषित वर्ग नहीं होगा। कार्ल मार्क्स मानते है कि पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के परिश्रम का लाभ उठाया जाना सामाजिक अन्याय है। कार्लमार्क्स अर्थ के आधार पर श्रमिकों व मजदूर वर्ग को सामाजिक न्याय प्रदान करना चाहते है।

1.7.2 भीमराव अंबेडकर :

सामाजिक न्याय के वैचारिक आधार के अंतर्गत भीमराव अंबेडकर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर भारतीय संविधान के निर्माता, स्वतंत्र विचारक, सामाजिक न्याय के पक्षधर भारत की महान् विभूति है। भीमराव अंबेडकर को 'बाबा साहेब' और 'भीम' के नाम से भी जाना जाता है। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर का जन्म महू (इंदौर) केन्द्र में 14 अप्रैल 1891 में महार परिवार में हुआ। 1917 में इन्होंने 'भारत का राष्ट्रीय लाभांश : एक ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन' पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय से पीएच॰डी॰ की उपाधि प्राप्त की। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर के चिन्तन का मुख्य विषय सामाजिक न्याय की समस्या रही है। वे भारतीय समाज में हो रहे अन्याय के प्रति हमेशा से ही जागरूक रहे है। क्योंकि भीमराव अंबेडकर बचपन से ही सामाजिक अन्याय के शिकार रहे है। उन्होंने भारतीय समाज में फैली कुरीतियों, जाति-प्रथा, विषमता, असमानता, शोषितों के अधिकारों और सामाजिक न्याय के प्रति जीवन भर संघर्ष किया।

डॉ॰ अंबेडकर समाज के कमजोर वर्गों तथा दलितों को न्याय दिलाना चाहते है जिससे समाज में फैली जाति-व्यवस्था के कारण असमानता के अन्याय से छुटकारा मिल सकें। भीमराव अंबेडकर न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना चाहते है जो स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त पर आधारित हो। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जाति-व्यवस्था को समाज से समाप्त करके, निम्न वर्गों को उच्च वर्गों के समान अधिकार प्रदान कर समाज में न्याय दिलाना चाहते है। डॉ॰ अंबेडकर के सामाजिक न्याय संघर्ष की आधारभूत मान्यताएँ व्यक्त करते हुए कहा है -

1. "सामाजिक न्याय के बुनियादी सिद्धांत स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व है।
2. इन सिद्धांतों का आधार तार्किकता व युक्तिसंगतता है।
3. समाज में इन सिद्धांतों की स्थापना के लिए शास्त्रीय विधान जिसे हिंदू ईश्वरीय विधान मानते रहे है, को नकारना जरूरी है, क्योंकि यह तार्किकता,

युक्तिसंगतता व नैतिकता पर आधारित नहीं है। इनकी जगह यह ईश्वर और धर्म का सहारा लेकर उच्च वर्णों के लोगों को विशेषाधिकार से संपन्न करता है जिससे उन्हें निम्न वर्गों एवं अत्यजों पर जन्म-जन्मांतर के लिए अन्याय एवं अत्याचार करने की खुली छूट मिल जाती है।

4. न्यायपूर्ण समाज की रचना के लिए न्यायपूर्ण विधान की रचना जरूरी है।

5. केवल न्यायपूर्ण विधान की रचना से ही न्यायपूर्ण समाज की स्थापना नहीं हो सकती। इसके लिए उस वैचारिकी, जिस पर कि अन्यायपूर्ण विधान तथा अन्यायपूर्ण समाज की रचना हुई है, को समूल को नष्ट करना जरूरी है और उसके स्थान पर स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित लोकतांत्रिक वैचारिकी और सामाजिक अभिस्वीकृति प्रदान किया जाना भी जरूरी है।"[50]

डॉ० भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा माने जाते है। भारतीय समाज में हिंदू धर्म के अंतर्गत चतुर्वर्ण व्यवस्था कायम है। चतुर्वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत निम्न जाति जो दलित है। दलितों के मसीहा बाबा भीमराव अंबेडकर जिन्होंने दलितों की स्थिति सुधारने के लिए कड़े प्रयास किए उन्होंने दलितों को अत्याचार व उत्पीड़न के कारण धर्म-परिवर्तन करवाया। समाज के उच्च वर्गों द्वारा निम्न वर्ग के प्रति भेदभाव, उत्पीड़न, अत्याचार, अपमान, अन्याय, घृणित व्यवहार एवं अस्पृश्यता को लेकर किए गए भेदभाव से मुक्त करवाना उनका प्रमुख लक्ष्य था। समाज में निम्न जाति के आधार पर ही भीमराव अंबेडकर ने असमानता के दौरान दलितों को बौद्ध धर्म में परिवर्तन करवाया जिससे समाज में दलितों के प्रति जातिगत भेदभाव व अन्याय से वंचित हो सके।

भीमराव अंबेडकर ने दलितों की स्थिति में सुधार लाने के लिए शिक्षा के प्रति जागरूक किया और उन्होंने दलित वर्ग को एक नारा भी दिया है 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।' समाज में समानता, स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान से जीवन जीने के लिए उन्होंने दलित वर्ग को शिक्षा के प्रति जागरूक किया। भीमराव अंबेडकर ने दलित मुक्ति के साथ-साथ नारी मुक्ति के लिए भी संघर्ष किया। समाज में नारी को भी स्वतंत्रता एवं सम्मानीय जीवन जीने का अधिकार है। उन्होंने नारी की समानता को महत्त्व देते हुए कहा है-"मैं समाज की उन्नति का अनुमान इस बात से लगाता हूँ कि उस समाज में महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है। नारी

की उन्नति के बिना समाज एवं राष्ट्र की उन्नति असंभव है।"[51] भीमराव अंबेडकर सामाजिक एकता और दलितोद्धार से सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहते थे जिसमें किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन न हो, सबको समान समझा जाए, जाति के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए। समाज में दलितों के प्रति उत्पीड़न पर रोक लगे, जिससे समाज में उच्चवर्ग द्वारा दलित वर्ग का किसी भी प्रकार से शोषण व अन्याय न हो।

भीमराव अंबेडकर मजदूर वर्ग की स्वतंत्रता के पक्ष में भी थे। बाबा भीमराव अंबेडकर ने स्वतंत्र मजदूर पक्ष की स्थापना भी की। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर सामाजिक न्याय की स्थापना में जाति-व्यवस्था को बाधक मानते है वे हिंदू समाज में व्याप्त जाति भेद के कारण अन्य वर्गों को न्याय नहीं मिल पाता है। दलित वर्ग समाज में भेदभाव व अन्याय का शिकार बनाया जाता है। समाज में दलित वर्ग के प्रति घृणात्मक व्यवहार केवल जातिभेद के आधार पर किया जाता है। भीमराव अंबेडकर दलित वर्ग जो समाज में अन्याय से पीड़ित है उन्हें समाज में समानता स्वतंत्रता प्रदान कर न्याय प्रदान करवाना चाहते है। अंबेडकर समाज के प्रत्येक वर्ग को न्याय प्रदान कर एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना चाहते थे।

1.7.3 हिंदू समाज के विविध प्रसंग :

भारतीय हिंदू समाज में विविध प्रसंगों के अंतर्गत रीति-रिवाज, परंपराएं, रूढ़िगत मान्यताएं, धर्म व संस्कृति विद्यमान है। वर्तमान युग में हिंदू समाज में अंधविश्वास व रूढ़िगत मान्यताएं प्रचलित है जिसके कारण भारतीय समाज सामाजिक न्याय से वंचित रहा है। सर्वप्रथम हिंदू समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्चस्व कायम है। जिसके माध्यम से महिलाओं को सामाजिक अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। हिंदू समाज के अंतर्गत चतुर्वर्ण व्यवस्था में निम्न जाति के प्रति सामाजिक अन्याय स्थापित है वर्तमान युग में सामाजिक न्याय से वंचित स्त्रियां और दलित है जो परंपराओं, रूढ़ियों व अंधविश्वासों से हिंदू समाज में सामाजिक अन्याय से सदैव पीड़ित व शोषित रहे है।

हिंदू समाज में स्त्रियों को लेकर अगर सामाजिक न्याय की बात करें तो पितृसत्ता के तंत्र से उन्हें अन्याय ही प्राप्त हुआ है। क्योंकि भारतीय समाज में हिंदू धर्म के अनुसार पुत्र को ही सत्ता का अधिकारी माना जाता है। चाहे वो धर्म को

लेकर, पर्व को लेकर, व्रत को लेकर ही क्यों न हो? आज भी हिंदू समाज में स्त्री अपने पति की लम्बी आयु के लिए व्रत धारण करती है परन्तु स्त्री के लिए कोई व्रत हिंदू समाज में नहीं है। वर्तमान में भी पुत्र प्राप्ति की कामना की जाती है और कन्याओं के जन्म पर शोक मनाए जाते है। हिंदू समाज में धर्म, रीति-रिवाज के अंतर्गत पुत्र ही पिता की मृत्यु पर संस्कार के अंतर्गत मुखाग्नि प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत पुरुष ही श्रेष्ठ है। हिंदू समाज धर्म संस्कारों को अधिक महत्त्व देता है। हिंदू समाज के विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले रीति-रिवाज, परंपराएँ, पुत्र की सत्ता आदि से समाज सामाजिक न्याय से वंचित रहता है जिससे स्त्रियों के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। भारतीय संविधान में कानून व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना की गई है परन्तु हिंदू धर्म में स्त्री व दलितों के साथ सदैव ही अन्याय होता आया है जिससे समाज में स्त्री व दलित दोनों ही सामाजिक न्याय से वंचित रहे है।

हिंदू समाज के अंतर्गत जाति भी सामाजिक अन्याय का सबसे बड़ा कारण रही है परन्तु हिंदू समाज जाति को संविधान के अंतर्गत निषेध मान लेने पर भी अपनी व्यवस्था को महत्त्व देते है। हिंदू समाज में वर्तमान में भी दलितों की स्थिति दयनीय व अपमानजनक व अन्याय से परिपूर्ण है। कँवल भारती हिंदू धर्म में दलितों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहते है-"हिंदू धर्म में दलितों को दास माना जाता है और उन्हें समान अधिकार प्राप्त नहीं है। परंतु भारत के कानून में वे स्वतंत्र मानव है और उन्हें समान अधिकार हासिल है। भारत में धर्म को कानून से ऊपर माना जाता है। यहां हिंदू अपने धर्म के आचरण में कानून की परवाह नहीं करते हैं। यही कारण है कि यहां कानूनन भेदभाव समाप्त होने के बावजूद धर्म का शासन कायम है जो भेदभाव को स्वीकृति प्रदान करता है।"[52] डॉ॰ भीमराव अंबेडकर ने हिंदू धर्म के अंतर्गत जाति भेदभाव व अन्याय के प्रति विरोध किया है कि समाज में समानता स्थापित करने के लिए जातिगत आधार पर किए जाने वाले भेदभाव, अन्याय को नष्ट करना होगा-"हिंदू धर्म में जाति जन्म से प्राप्त होती है। व्यक्ति का जन्म जिस जाति में होता है, हिन्दू धर्म उसको उसी जाति का मानता है। जिस समाज में जाति के सिवाय गति नहीं, जन्म के सिवाय जाति नहीं। ऐसे समाज में कोई भी आने की हिम्मत नहीं करेगा। अन्दर से बाहर जाने का मार्ग

हिन्दू धर्म में खुला रखा है। परन्तु बाहर से अन्दर आने का रास्ता बन्द है। इस विधि से जैसे पानी अन्दर लेने वाली टोंटी (नल) का मुंह बन्द रहता है परन्तु पानी छोड़ते रहने वाली टंकी खुली हो तो उसके हौद में 'बूंद' भर भी पानी न, रहकर वह खाली हो जाता है। उसी तरह हिन्दूधर्मीय समाज की आज वही स्थिति होने वाली है। यह प्रक्रिया रूके इसके लिए जातिभेद का उन्मूलन करना जरूरी है।"[53]

हिंदू समाज के विविध प्रसंगों में परिवर्तन की आवश्यकता है। समाज पुरानी परंपराओं, रीति-रिवाज रूढ़ियों में जकड़ा हुआ है। इक्कीसवीं सदी में अन्धविश्वास व परंपराओं की जकड़न को तोड़कर ही सामाजिक न्याय स्थापित किया जा सकता है हिंदू समाज में लोगों को अपनी पुरानी मानसिकता त्याग कर उसमें परिवर्तन लाना होगा जिससे समाज में भी परिवर्तन आएगा और सही मायने में सामाजिक न्याय को स्थापित किया जा सकेगा।

1.7.4 जाति-व्यवस्था :

भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था अत्यंत प्राचीन काल से विद्यमान है। सामाजिक न्याय को स्थापित करने से अभिप्राय अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करना है। समाज में अन्याय की जड़े काफी गहरी हैं, चाहे वह जाति-व्यवस्था को लेकर ही क्यों न हो। जाति-व्यवस्था भी समाज में अन्याय का बहुत बड़ा कारण बनी हुई है। भारतीय हिंदू समाज में जाति-व्यवस्था विशेष रूप से पाई जाती है। भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था के पश्चात् जाति-व्यवस्था का विकास हुआ। भारतीय समाज मुख्य रूप से चार वर्णों में विभाजित है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। जाति की उत्पत्ति के संबंध में सबसे प्राचीन व्यवस्था ऋग्वेद में 'पुरुष सूक्त' के एक मंत्र से मिलता है -

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् वाहू राजन्यः कृतः।
उरूतदस्य यद्धैश्यः पद्भ्योः शूद्रोऽजायत ॥

अर्थात् ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, बाँह या भुजा से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य एवं पैर से शूद्र पैदा हुए।"[54] जाति-व्यवस्था को समाप्त करने के लिए प्रारम्भ से ही अनेक आंदोलन हुए। मध्यकाल में महात्मा बुद्ध, नाथ, सिद्ध, संतों ने मिलकर सामाजिक भेदभाव अन्याय के प्रति आवाज उठाई एवं समाज को जागरूक किया। तत्पश्चात् आंदोलनों में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानंद, ज्योतिबा फुले, नारायण गुरू

आदि ने जाति-व्यवस्था के प्रति आवाज उठाकर अन्याय का विरोध किया। समाज में वर्ण-व्यवस्था की जड़े काफी गहरी होने के कारण वर्तमान में जाति-व्यवस्था का रूप धारण कर चुकी है। "जाति एक भली-भांति चिह्नित पृथक समुदाय है, जिसके सदस्य सगोत्रीय विवाह के जरिये तथा प्रायः किसी एक आनुवंशिक व्यवसाय अथवा किसी वास्तविक या कल्पित कर्त्तव्य के जरिये एक-दूसरे से बंधे होते है।"[55]

वर्तमान में जाति-व्यवस्था को लेकर हो रहे सामाजिक अन्याय के कारण निम्न वर्ग जो सामाजिक न्याय से सदैव ही वंचित रहा है। क्योंकि समाज में ऊंच-नीच का भेदभाव जन्म से माना गया है। मोहनदास नैमिशराय जाति-व्यवस्था के कारण सामाजिक अन्याय के प्रति अपने कथन की प्रस्तुति देते हुए कहते है- "जाति वर्ण पर आधारित व्यवस्था व्यक्ति, समुदाय या समूह के मूल्यांकन के लिए एक गलत प्रमाण हमारे हाथों में थमा देती है, जिसके अनुसार किसी के महत्त्व प्रतिभा और प्रतिष्ठा का निर्धारण उसकी उपलब्धियों पर नहीं, उस जाति के आधार पर किया जाता है, जिसमें उसने संयोगवश जन्म ले लिया है। जाति-व्यवस्था पर आश्रित समाज में, जहां सामूहिक गैरबराबरी और सामाजिक गर्हणा ज्वार पर रहती है, एक व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति (स्टेटस) पूरी जिंदगी के लिए जन्म के साथ ही निर्धारित हो जाती है। इस प्रकार जाति-व्यवस्था हमारे सामाजिक संस्तरण को सामाजिक न्याय से विहीन बना देती है।"[56]

जाति-व्यवस्था समाज का सही रूप निर्धारण करने में बाधक सिद्ध हुई है। जो समाज में विभिन्न समस्याओं व अन्याय को जन्म देती है जिसके अंतर्गत सामाजिक न्याय में व्यवधान उत्पन्न होता है। "जाति-व्यवस्था सामाजिक संस्तरण को संकुल बनाती है और जन्म जातिगत विनिर्धारकों के कारण संकीर्णताओं और असमानताओं को मुस्तकिल बनाती है, जिससे शोषण, दोहन, वंचन और विगर्हण के जबड़े मजबूत होते हैं तथा एक दुर्द्धष यथास्थितिवाद (स्टेटसकोइज्म) समाज को 'लाकून' की तरह जकड़े रहता है।"[57]

जाति-व्यवस्था के रहते भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना असंभव प्रतीत होती है। जाति-व्यवस्था में सामाजिक न्याय के तत्त्वों का आभाव पाया गया है। भारतीय संविधान के अंतर्गत कानून व्यवस्था में जाति के आधार पर भेदभाव व अन्याय को निषेध पारित किया गया है परंतु फिर भी भारतीय समाज में

जाति के आधार पर असमानता कायम है। सामाजिक न्याय के अनुसार समानता व स्वतंत्रता समान रूप से प्रत्येक व्यक्ति को मिली है परन्तु जाति-व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति की समानता व स्वतंत्रता के अधिकारों पर अनेक प्रतिबंध होने के कारण व्यक्ति के स्वाभिमान का हनन होता है। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज के विकास में बहुत बड़ी बाधा मानते है- "जब तक जाति-व्यवस्था नहीं बदलेंगे, तब तक कोई प्रगति नहीं होगी। जाति-व्यवस्था की नींव पर जो भी निर्माण करेंगें वह चटक जाएगा।"[58]

जाति-व्यवस्था में व्यक्ति को उसके गुणों के अनुरूप समाज में सम्मान नहीं मिलता बल्कि उच्च जाति के आधार पर ही सम्मान मिलता है। जाति-व्यवस्था के अंतर्गत निम्न जाति के लोगों के गुणों व कार्य को महत्त्व न देकर सामाजिक अन्याय को सहना पड़ता है। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जाति-व्यवस्था को समाप्त करके समाज में समानता स्वतंत्रता एवं भाईचारे की भावना को स्थापित कर समाज का विकास करने के पक्ष में थे। भारतीय जाति के विश्लेषण और उन्मूलन की दिशा में भीमराव अंबेडकर अपने विचार प्रस्तुत करते है-"चतुरवर्ग की चौखट तोड़कर इसका एक वर्ण करना चाहिए और चतुर वर्ण के अंतर्गत असमानता का उन्मूलन करना भी जरूरी है। नैसर्गिक दृष्टि से कोई भी मनुष्य दूसरे के समान नहीं होता। किसी का शरीर छोटा, किसी का बड़ा, किसी की बुद्धि तीव्र किसी की मन्द होती है। अधिक प्राप्ति यह किसी के जन्म या पैसे पर अवलम्बित न होकर, उसके गुण के आधार पर व व्यक्ति को समानता से व्यवहार करना चाहिए।"[59]

डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जाति-विहीन समाज के लिए वर्ण एवं जातिगत-व्यवस्थाएँ हिंदू धर्म की परम्पराओं व मान्यताओं का प्रतीक मानते है और जाति-निषेध समाज के लिए अपने कथन की प्रस्तुति देते हुए कहते है-"समाज से वर्ण एवं जाति-व्यवस्थाएँ तब तक समाप्त नहीं की जा सकती जब तक उन्हें संपोषित करने वाली हिंदू वैचारिकी व हिंदू धर्म की मान्यताओं के लोगों के समकक्ष अवैज्ञानिक, अन्यायपूर्ण व अनुचित नहीं ठहराया जाता। ऐसा होने पर ही लोग उनके परित्याग के लिए मानसिक रूप से तैयार होंगे और तभी जातिविहीन समाज की रचना का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।"[60] शैलेन्द्र शैली जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की प्रगति के रास्ते में रोड़ा मानते है जो वर्तमान में मौजूद बनी हुई है

जाति भेद उन्मूलन के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए कहते है- "जाति व्यवस्था एक तरफ तो असमान आर्थिक क्षमताओं-विशेषकर भूमि संबंधों पर टिकी है और दूसरी ओर रूढ़िपंथी व कूप मंडूक सामंती विचारधारा से उसका पोषण हो रहा है। इन दोनों पर चोट किये बगैर जाति-व्यवस्था को खत्म कर पाना नामुमकिन है।"[61]

समाज में जाति-व्यवस्था की स्थापना पर प्रहार करने के लिए नव पीढ़ी की जागरूकता, शिक्षा के माध्यम से विकास व उन्नति के अंतर्गत समाज में जाति भेद उन्मूलन को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए समाज में अंतर्जातीय विवाह को भी एक माध्यम माना गया है जिससे जातिगत मानसिकता कमजोर होकर असमानता के अन्याय को कम किया जा सकता है। डॉ॰ घुरिए जाति व्यवस्था को मिटाने के लिए अपने सुझाव देते हुए कहते है-"जातिवाद से उत्पन्न हुए संघर्ष को अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देकर दूर किया जा सकता है। प्रारम्भ से ही लड़के-लड़कियों की सह-शिक्षा का प्रबन्ध किया जाए और भिन्न लिंग के व्यक्तियों को एक-दूसरे के निकट आने के अवसर दिए जाएं। इससे लैंगिक आचरण में सुधार होगा और साथ ही साथ जातिवाद का क्रियात्मक विरोध किया जाएगा। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिलेगा और अंतर्जातीय विवाह करने वाले व्यक्ति एक ऐसा जातिविहीन वातावरण पैदा कर देंगे और एक ऐसी पीढ़ी उत्पन्न करेंगे जो जाति-व्यवस्था की घोर विरोधी होगी।"[62]

भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था के कारण देश की प्रगति व राष्ट्रीयता भावना के विकास में भारी बाधा मानी जाती है। भारतीय संविधान द्वारा जाति के आधार पर भेदभाव व अन्याय के प्रति अधिनियम व अनुच्छेद पारित किए गए है। जिसके अंतर्गत सामाजिक न्याय की स्थापना की गई है। वर्तमान में समाज के लोगों की परम्पराओं व रूढ़ियों से जकड़ी मानसिकता में परिवर्तन लाना ही जाति-व्यवस्था को समाप्त करने में उपयोगी सिद्ध होगा।

1.7.5 अस्पृश्यता :

भारत में अस्पृश्यता जाति-व्यवस्था की देन है। जाति-व्यवस्था के कारण ही ऊँच-नीच का भाव ही अस्पृश्यता का मूल कारण रहा है। समाज में केवल निम्न वर्ग को ही अस्पृश्य माना जाता है। समाज का उच्च वर्ग निम्न वर्ग के प्रति घृणा व भेदभाव की भावना रखता है। भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 17 में

अस्पृश्यता का अंत हो चुका है। परन्तु भारतीय समाज के उच्च वर्ग भारतीय कानून व्यवस्था में विश्वास रखने के लिए बाध्य नहीं है। अस्पृश्यता का अर्थ, "उन सामाजिक कुरीतियों से है, जो जाति-प्रथा के संदर्भ में परम्परा से विकसित हुई है।"[63] अस्पृश्यता के अंतर्गत समाज का निम्न वर्ग जिसे सार्वजनिक स्थान पर प्रवेश करने, मन्दिरों में प्रवेश करने, आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न थी। वर्तमान में भी निम्न जाति के लोगों को सामाजिक न्याय से वंचित रखा जाता है। "अस्पृश्यता जाति का ही परिणाम है मनोवैज्ञानिक रूप से जाति प्रथा और अस्पृश्यता आपस में गुंथी हुई है। जाति-प्रथा और अस्पृश्यता एक ही सिद्धान्त पर आधारित है। यदि एक व्यक्ति छुआछात का व्यवहार करता है, तो इसका अर्थ है कि जाति व्यवस्था में विश्वास रखता है।"[64]

भारतीय समाज में निम्न कही जाने वाली जाति के लोग सवर्ण जाति के लोगों से अस्पृश्यता के अन्याय का शिकार होते है। समाज के उच्च वर्ग कहे जाने वाले सवर्ण जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को अस्पृश्य मानकर उन्हें मन्दिरों में प्रवेश नहीं करने देते है केवल जाति के आधार पर ही इस प्रकार का भेदभाव भारतीय समाज में देखने को मिलता है। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर सवर्ण जाति द्वारा अस्पृश्यता को लेकर अन्याय का विरोध करते हुए कहते है-"अस्पृश्यों के कारण मन्दिर अपवित्र नहीं होगा, यदि होगा तो पापियों के कारण होगा और अछूत (दलित) पापी नहीं है।"[65]

उच्च वर्ग की मानसिकता निम्न जाति के प्रति असमानता की है। भारतीय संविधान द्वारा प्रत्येक नगारिक को दिये गए मौलिक अधिकार समान है। सामाजिक न्याय की अवधारणा के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति के साथ किसी भी जाति, धर्म व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा यही सामाजिक न्याय में विद्यमान है। परन्तु दलितों के प्रति सदैव ही उच्चवर्ग शोषण व अन्याय करता आया है। जाति के आधार पर ही समाज में सवर्ण जाति के लोग उच्च वर्ग पर विराजमान है। कानून बना देने के बावजूद भी सवर्ण व स्पर्शीय लोग जाति को समाप्त करना नहीं चाहते है। समाज में समानता व स्वतंत्रता को स्थापित करने के पक्ष में नहीं है क्योंकि जाति-व्यवस्था खत्म हो जाने के बाद उच्च वर्ग को सवर्ण जाति के नाम से कौन सम्मानित करेगा? निम्न कहे जाने वाली जाति के लोगों के

घर आज भी शहरों व गांवों के बाहर बनाए जाते है जो यह भी एक अस्पृश्यता का ही रूप है। जिससे निम्न वर्ग को सामाजिक न्याय से वंचित रहना पड़ता है- "गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली यह बहुसंख्यक आबादी इसके अलावा थोड़े से शक्ति सम्पन्न लोगों के हाथों सामाजिक उत्पीड़न का भी शिकार होती है। गरीबों की भारी आबादी पीढ़ियों से शहरी एवं ग्रामीण मलिन बस्तियों में रहने को अभिशप्त है, और उस जाति के प्रमाण चिह्न प्रदूषण शुद्धता लक्षणों का शिकार है, जो कि आजादी के बाद से देश द्वारा हासिल की गई समस्त सुस्पष्ट प्रगति के बावजूद कायम है और कुछ मामलों में तो और ज्यादा सघन हुई है।"[66]

भारतीय संविधान ने भले ही अस्पृश्यता का अंत कर दिया हो परन्तु आज भी वर्तमान में अस्पृश्यता जिसे छुआछात भी कहते है जो भारतीय समाज में 154 प्रकार से विद्यमान है। जिसके तहत निम्न जाति को उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। मनुष्य द्वारा ही मनुष्य को शोषण व गुलाम बनाया जा रहा है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का समाज के ऊपर कोई फर्क नहीं दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी में आज भी दलित वर्ग को अस्पृश्यता का सामना करना पड़ता है जिसका परिणाम जाति है। जाति जो सवर्ण वर्ग द्वारा हिंदू धर्म में विराजमान है। जिसका अंत भारतीय संविधान कर चुका है परन्तु सवर्ण जाति के लोग अस्पृश्यता व दलित उत्पीड़न, अत्याचार को बनाए रखने में सहमत है। भारत सरकार द्वारा अस्पृश्यता को 1955 में एक अधिनियम पारित किया और अस्पृश्यता को व्यवहार में लाने के लिए कानून द्वारा कारावास व जुर्माना का प्रावधान है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत अस्पृश्यता का स्थान प्रमुख है। क्योंकि अस्पृश्यता के कारण ही निम्न वर्ग को सामाजिक न्याय से वंचित रहना पड़ा और जाति के आधार पर अन्याय ही अन्याय मिला। भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को समाप्त करके सामाजिक न्याय प्रदान करने का प्रावधान बनाया है ताकि निम्न वर्ग को समाज में उनके अधिकारों से वंचित न करके समाज में समानता दिलाई जा सके।

1.7.6 स्त्री संबंधी विचार :

इक्कीसवीं सदी में स्त्री विमर्श केन्द्र बिन्दु बन गया है। इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय को लेकर स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो कर लड़ रही है। आज स्त्री विमर्श में स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता के संघर्ष का दौर चल

रहा है। इक्कीसवीं सदी में शिक्षित नारी समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन ला रही है। उसने स्वयं की स्थिति को सुधार कर स्त्री विमर्श में विकास व चेतना को जागृत किया है। सामाजिक न्याय के वैचारिक आधार में स्त्री संबंधी विचारों के अंतर्गत स्त्री स्वयं को कमजोर न समझ कर अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किए गए मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत का स्त्री उपयोग कर सामाजिक न्याय प्राप्त करने में सक्षम हो रही है। मान चन्द खंडेला 'कामकाजी महिलाओं की सफलताएं और सीमाएं के अंतर्गत स्त्री विमर्श के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है-"आज लिंग के आधार पर व्यवसाय करने तथा नौकरी के समस्त भेद संविधान द्वारा समाप्त कर दिए गए है। पुरुष तथा नारी के वेतन में सैद्धांतिक रूप से कोई भेदभाव नहीं किया जाता है और यही कारण है कि आज नारी हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्शा रही है और अपनी स्थिति को दिन-प्रतिदिन उन्नत कर रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज की नारी केवल गृहिणी नहीं वरन् घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग बनकर अपने कर्त्तव्य को सफलतापूर्वक निभा रही है।"[67]

वर्तमान में स्त्री शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है। आज स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में सशक्त व जागृत होकर सशक्तिकरण की ओर वृद्धि कर रही है। सरकार की नीतियों में भी उत्पीड़न, शोषण, अत्याचार, असमानता आदि को दूर करने के लिए समाज के संपूर्ण विकास की दिशा में सशक्तिकरण को लिया है। आज हमारे देश में स्त्रियां स्वयं को कमजोर न समझकर अपनी परिस्थितियों में परिवर्तन ला रही है। महिला सशक्तिकरण में व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैधानिक, मनोवैज्ञानिक व वैचारिक रूप से सशक्त हो रही है जो सामाजिक न्याय की अवधारणा में निहित है।

सामाजिक क्षेत्र के अंतर्गत स्त्री आज सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों व परंपराओं को नकार कर आगे बढ़ रही है। स्त्री पुरुष की मानसिकता पर निर्भर न रहकर अपनी दशा में परिवर्तन ला कर अपने अस्तित्व को पहचान रही है। आर्थिक स्तर पर भी स्त्रियों ने सफलता प्राप्त की है। स्त्री अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग कर स्वयं स्वतंत्र होकर निर्णय ले रही है। राजनीतिक स्तर पर भी स्त्रियां पुरुषों के बराबर भागीदारी देने में समर्थ है। पुरुष प्रधान समाज के अंतर्गत

महिलाओं को कमजोर हीन, बलहीन, विवेक के आधार पर निम्न स्तर का माना जाता है। परन्तु स्त्रियां पूर्ण विवेक के आधार पर भी स्वतंत्र व सक्षम है। स्त्रियां शिक्षित होकर समाज की दशा में भी परिवर्तन ला रही है। वर्तमान में स्त्री परंपरागत समाज को नकार कर अपनी मानसिकता को स्वतंत्र करते हुए हर क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा रही है। आज स्त्री सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रयोग करके अपनी नवीन भूमिका के साथ विश्व स्तर पर भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

1.7.7 आरक्षण :

सामाजिक न्याय का एक पक्ष आरक्षण माना गया है। भारतीय समाज व्यवस्था में आरक्षण की मांग है। आरक्षण का सामान्य अर्थ 'सुरक्षित करना' माना गया है। समाज में अधिकार विहीन वर्ग अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए न्याय की मांग करता है। समाज में उन वर्गों के लिए आरक्षण मांगा जाता है जो परम्परागत रूप से कमजोर, दलित व महिलाएं है। समाज का वह कमजोर व पीड़ित वर्ग जिसके साथ अन्याय हुआ है। सदियों से हुए अन्याय की भरपाई करने के लिए पीड़ित वर्ग को वर्तमान में न्याय प्रदान करवाता है।

आरक्षण का उद्देश्य समाज में सामंजस्य स्थापित करना एवं सामाजिक प्रगति को स्थायी रूप से बनाए रखना है। जियालाल आर्य आरक्षण को लेकर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते है-"सामाजिक और शैक्षणिक स्तर पर पिछड़े लोगों को वे सभी सुविधाएं ईमानदारी से उपलब्ध करायी जानी चाहिए, जिनसे आरक्षित वर्ग के लोग सामाजिक और शैक्षणिक तौर पर अन्य लोगों की बराबरी का स्तर पा सके।"[68] राजेन्द्र यादव आरक्षण को जरूरी मानते है, उनका मानना है कि अगर आरक्षण नहीं होगा तो दलित व स्त्री सामाजिक न्याय की लड़ाई कैसे लड़ेगें। वे शिक्षा व नौकरियों में आरक्षण देने के पक्ष में है उनके शब्दों में-"अब सवाल उठता है कि यह होगा कैसे? आरक्षण को कई लोग बहुत बुरा समझते हैं। कहते हैं कि आरक्षण इस समस्या का हल नहीं है। लेकिन मैं मानता हूँ कि आरक्षण एक हद तक इस समस्या का हल जरूर है। आरक्षण अगर नहीं होगा, तो दलित और स्त्री सामाजिक न्याय की लड़ाई कैसे लड़ेंगे? यह असमान शक्तियों की लड़ाई है। कमजोरों को ताकतवरों से लड़ने के लिए कोई सहारा तो चाहिए। जिनको आपने

कभी बढ़ने नहीं दिया, जिनको आपने कभी अवसर नहीं दिया, उन्हें शिक्षा और नौकरियों आदि में आरक्षण नहीं मिलेगा, तो वे कभी आगे आ ही नहीं सकते। अगर आप उनसे कहेंगे कि पहले शिक्षा लो, पहले मेरिट लाओ, पहले काम का अनुभव लाओ, तब तो आप इन चीजों की दौड़ में उनसे इतना आगे निकल चुके होंगे और इनका रूप इतना बदल चुके होंगे कि वे तो आपके बराबर कभी आ ही नहीं सकते। जब तक आप यह अवसर नहीं देंगें, वे आगे नहीं आ सकेंगे। आरक्षण से आगे आये बहुत से दलित अफसर आज दिखायी देते हैं। उनको सम्मान मिलता हो या न मिलता हो, लेकिन वे दिखायी तो देते है। आगे तो आये हैं। इसलिए आरक्षण जरूरी है।"[69]

दलितों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए आरक्षण आवश्यक जरूरी है। जो सदियों से पिछड़े हुए है उनकी स्थिति में परिवर्तन लाना सामाजिक न्याय प्रदान करना है। रामगोपाल सिंह आरक्षण को आवश्यक मानते हुए राष्ट्र की प्रगति के विकास में सहायक सिद्ध मानते है- "यह दलित, आदिवासी एवं अन्य कमजोर वर्गों व महिलाओं जो परम्परात्मक विधान या अलगाव के चलते सदियों से वंचित, पीड़ित व उपेक्षित रहे है, की उन्नति में सहायता कर उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ता है जिससे वे राष्ट्रीय प्रगति व निर्माण में सक्रिय भागीदारी कर सकें।"[70]

सामाजिक न्याय में आरक्षण प्रदान करना समाज में सामाजिक न्याय स्थापित करना है। भारतीय संविधान के अंतर्गत सामाजिक न्याय में आरक्षण के तहत महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण के 74वें संशोधन बिल 24 अप्रैल 1993 को पारित किया गया था परन्तु पुरुष वर्चस्व के तंत्र में महिलाओं को आरक्षण प्रदान नहीं किया गया है। भारतीय संविधान में आरक्षण के माध्यम से समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करने में सहायक है। वर्तमान में दलित, स्त्रियाँ व अन्य कमजोर वर्ग जिन्हें नौकरियों में आरक्षण प्रदान करने का प्रावधान है परंतु फिर भी सामाजिक न्याय से वंचित रखा जाता है क्योंकि भारतीय समाज जाति-व्यवस्था की गहराई में बुरी तरह से जकड़ा हुआ है जिसके माध्यम से समाज के पिछड़े व कमजोर वर्ग को समाज में समानता का व्यवहार नहीं मिलता है-"नौकरियों आदि में जो आरक्षण होता है, वह भी एक स्तर पर चाहे जितना उचित और जरूरी लगे, दूसरे स्तर पर व्यवस्था का पोषक होता है। व्यवस्था ने एक खेल-सा बना लिया है कि जो भी

बराबरी की मांग करे चाहे वह दलित हो या स्त्री, पिछड़ा हो या आदिवासी-सामाजिक न्याय के नाम पर उसे आरक्षण के झुनझुने से बहलाते रहो और समाज में गैर बराबरी बढ़ाते रहो। आरक्षण के सहारे पढ़-लिखकर ऊँचे पदों पर पहुंच जाने वाले लोगों को 'सोशल जस्टिस' देने के बजाय एक 'सोशल स्टेटस' देकर व्यवस्था उन्हें अपना अंग बना लेती है। इस प्रकार वह उन्हें उनके समुदाय से अलग कर देती है। लेकिन समाज में जातिवाद पर आधारित ऊँच-नीच की व्यवस्था के बने रहने के कारण ऐसे लोग जिस नये वर्ग में जा पहुँचते हैं, उसमें भी घुलमिल नहीं पाते, क्योंकि वहाँ ऊँची जाति के लोग उन्हें बराबरी का दर्जा नहीं देते।"[71]

सामाजिक न्याय के अंतर्गत नौकरियों आदि के आरक्षण में अलग-अलग व्यवस्थाएं हैं। जो समाज में समानता स्थापित करने वाले है। संविधान के अनुच्छेद 15(4) एवं 15(3) के तहत कमजोर वर्गों एवं महिलाओं को तकनीकी व उच्च शिक्षा प्रवेश में आरक्षण प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 330 तथा अनुच्छेद 332 में राजनैतिक आरक्षण का प्रावधान है। आरक्षण के अंतर्गत सामाजिक न्याय का उद्देश्य समतामूलक समाज का निर्माण करना है। समाज में वे वर्ग जो अन्याय से पीड़ित है। आरक्षण उन्हें न्याय प्रदान कर समाज में सामाजिक न्याय दिलाता है यही आरक्षण का औचित्य है।

1.8 निष्कर्ष :

भारतीय संविधान के अंतर्गत सामाजिक न्याय व अवधारणा से अभिप्राय समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति वर्ग, जाति की समानता से है। भारतीय संविधान के अनुसार मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक सिद्धान्तों द्वारा सामाजिक न्याय की स्थापना की गई है। सामाजिक न्याय के वैचारिक आधार में कार्ल मार्क्स व भीमराव अंबेडकर सामाजिक न्याय के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। हिंदू समाज के विविध प्रसंगों द्वारा भी सामाजिक न्याय के अंतर्गत सामाजिक समस्याओं व अन्याय का विरोध किया गया है। जाति-व्यवस्था व अस्पृश्यता को लेकर लोगों के साथ हो रहे अन्याय का विरोध कर न्याय की मांग की जा रही है। भीमराव अंबेडकर ने जाति-व्यवस्था को सामाजिक विकास की बहुत बड़ी बाधा माना है। स्त्री सम्बन्धी विचारों में स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर अन्याय का विरोध कर रही

है। समाज में आरक्षण भी सामाजिक न्याय का एक पक्ष माना गया है। आरक्षण देकर ही दलितों, महिलाओं व आदिवासी अन्य कमजोर वर्गों के साथ न्याय हो सकता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा व वैचारिक आधार में समाज के प्रत्येक मनुष्य को समानता व स्वतंत्रता प्रदान करके सामाजिक न्याय प्रदान किया जाता है।

संदर्भ सूची :

1. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्द कोश, पृ० 822
2. सुरेश कुमार, रामनाथ साही, अंग्रेजी हिंदी शब्द कोश, पृ० 1134
3. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ० 344
4. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्द कोश, पृ० 460
5. सुरेश कुमार, रामनाथ साही, अंग्रेजी शब्द कोश, पृ० 664
6. धर्मपाल मैनी, खण्ड तृतीय, विश्व का प्रथम मानव मूल्य-परक शब्दावली विश्वकोश, पृ० 1011
7. सं० जयशङ्कर जोशी, हलायुध कोश, पृ० 403
8. सं० रामचन्द्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ० 234
9. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ० 28
10. रामगोपाल सिंह, सामाजिक न्याय लोकतंत्र और जाति व्यवस्था, पृ० 18
11. पवन चौधरी 'मनमौजी', कानून की डाल पर, पृ० 32
12. शेलेन्द्र सेंगर, राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, पृ० 269
13. परमजीत कौर, दयानंद कृत यजुर्वेद भाष्य में सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ, पृ० 130
14. आचार्य पं० दया निधि शर्मा, पंचशील, पृ० 69
15. अरूणोदय बाजपेयी एवं अंजलि त्रिपाठी, राजनीतिक चिन्तन में बदलती न्याय की अवधारणा, प्रतियोगिता दर्पण, दिसंबर 2008, पृ० 849
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. एस० एस० अवस्थी, एन० डी० अरोड़ा, राजनीतिक सिद्धान्त, पृ० 275
22. हैन्स केल्सेन जेनरल थ्योरी ऑफ लौ एण्ड स्टेट्स, पृ० 13, 14
23. Bardwin, R.W. Social Justice, p. 1
24. Digest, Do Justitinet, p. 1.1
25. R.M Hare, The Language of Moral, Press for Lawn.

26. Sidgwick, Methods of Ethics, p. 264
27. सं॰ प्रेमचन्द पातंजलि, सामाजिक न्याय के पचास वर्ष, पृ॰ 1
28. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 9
29. सुरेन्द्र कटारिया, सामाजिक प्रशासन (कल्याण प्रशासन), पृ॰ 38
30. आर॰ एन॰ त्रिवेदी, भारतीय सरकार और राजनीति, पृ॰ 428
31. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 28
32. ओमप्रकाश गाबा, राजनीति सिद्धांत के आधार-तत्त्व, पृ॰ 127
33. वही, पृ॰ 126
34. रामगोपाल सिंह, सामाजिक न्याय, लोकतन्त्र और जाति व्यवस्था, पृ॰ 18
35. शैलेन्द्र सेंगर, राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, पृ॰ 265
36. महेन्द्र कुमार मिश्रा, भारतीय राजनीति समस्याएं और समाधान, पृ॰ 4
37. D.N. Thripathi, Social Justice of India, p. 81
38. अनु॰ जो वोट वी, प्लेटो रिपब्लिक सेक्शन 8
39. एन॰ डी॰ अरोड़ा, एस॰ एस॰ अवस्थी, राजनीतिक सिद्धांत, पृ॰ 275
40. श्री अरविन्द, मानव एकता का आदर्श, पृ॰ 10
41. रविन्द्रनाथ टैगोर, क्रियेटिव यूनिटी, पृ॰ 136
42. मानवेन्द्र राय, न्यू ह्यूमैनिज्म, पृ॰ 59
43. अमरेश्वर अवस्थी, आधुनिक भारतीय समाज एवं राजनीतिक चिंतन, पृ॰ 56
44. वही
45. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 32
46. वही, पृ॰ 29
47. ब्रजकिशोर शर्मा, भारत का संविधान एक परिचय, पृ॰ 49
48. Mark and Engels, Selected Works, Vol. 1, p. 34
49. Karl Marks, Communist Manifesto, p. 76
50. रामगोपाल सिंह, डॉ॰ अंबेडकर सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, पृ॰ 79
51. आभालता चौधरी, नारी स्वतंत्रता और डॉ॰ अंबेडकर, अपेक्षा पत्रिका जनवरी-मार्च, 2008, पृ॰ 35
52. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृ॰ 22
53. डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं, पृ॰ 132
54. गणेश पाण्डेय, अरूणा पाण्डेय, भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ॰ 182
55. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 45

56. मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी मासिक बयान पत्रिका, सितम्बर, 2009, पृ॰ 22
57. वही
58. भीमराम अंबेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 1, पृ॰ 89
59. डॉ॰ भीमराव अंबेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं, पृ॰ 128
60. रामगोपाल सिंह, डॉ॰ अंबेडकर : सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, पृ॰ 58
61. सुभाष चन्द्र, जाति क्यों नहीं जाती?, पृ॰ 120
62. सोती शिवेन्द्र चन्द्र, भारत में सामाजिक समस्याएँ, पृ॰ 56
63. प्रत्यूष रंजन बालव, अस्पृश्यता एवं विधिक प्राविधान, पृ॰ 169
64. वही, पृ॰ 2
65. डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर, अन्याय कोई परम्परा नहीं, पृ॰ 112
66. रामपुनियानी, सामाजिक न्याय एक सचित्र परिचय, पृ॰ 30
67. मानचन्द खंडेला, आधुनिकता और महिला उत्पीड़न, पृ॰ 52
68. जियालाल आर्य, आरक्षण और राज्य का दायित्व, पृ॰ 25
69. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 30
70. रामगोपाल सिंह, डॉ॰ अंबेडकर : सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, पृ॰ 85
71. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 62